कविता-कुञ्ज

अर्थात्

[अंग्रेज़ महाकवि ग्रे, लाङ्गफैलो, वर्ड्सवर्थ प्रभृति]

कवियों की अंग्रेज़ी कविताओं का

हिन्दी—पद्यानुवाद

आलस्य त्यागो वीर बन, मत परमुखापेक्षी रहो।
स्वयम् सुस्त भविष्य देवी, मत उसे जपते रहो॥
उद्योग के उद्यान में, निर्भीक हो उद्यम करो।
है कार्य-थल सर्वत्र ही, बस—कर्म—पथ पर पग धरो॥

अनुवादक व प्रकाशक

बाबू गणेश प्रसाद सिंघई

सागर सी० पी०

प्रथम संस्करण ५०० प्रति } १ जनवरी १९२९ { मूल्य ॥)

प्राक्कथन

अंग्रेजी साहित्यज्ञ महाकवि शेक्सपियर, लाङ्ग फ़ैलो, मिल्टन, स्कॉट, थामस ग्रे, डब्ल्यू० एच० वॉटन, प्राकृतिक सौन्दर्य-प्रेमी वर्ड्स वर्थ प्रभृति अमर आत्माओं से अखिल अंग्रेजी साहित्य-संसार पूर्णतया चिर परिचित है। कतिपय हिन्दी-हितैषी सज्जनों के भी प्रशान्त, प्रशस्त मन-मानस-तल पर उक्त अमर आत्माएँ मरालवत् कल्लोल-विहार करती हैं। उनकी सु-ललित दिव्य रचनाएँ जिन्हें उन्होंने अपनी मातृ-भाषा (अंग्रेज़ी) में लिपिबद्ध किया है; सर्वदा मुक्त कंठ से सराहनीय हैं।

उन दिव्य महानुभावों के गम्भीर, गवेषणापूर्ण, परिपक्व सैद्धान्तिक सुविचार सुमन संचय कर उनकी सु-मधुर सुवास से प्रत्येक हिन्दी-ज्ञाताओं को सुवास मय करने हेतु अनुवादक ने उनके ही अंग्रेज़ी पद्यों का मार्मिक हिन्दी छायानुवाद पद्यमय सरल भाषा में करने का यथा-शक्ति प्रयत्न किया है। अनुवादक भाषा की सुगमता एवम् मूल की रक्षा में कितना सफल हुआ है यह पाठकों के ऊपर ही छोड़ा जाता है।

यदि मेरी इस सुगम हिन्दी-छाया-रचना से हाई स्कूल के विद्यार्थियों ने किञ्चित् भी लाभ उठाया तो अनुवादक अपना श्रम बहुत कुछ सफल समझेगा। क्योंकि पुस्तक का अधिकांश उनके पाठ्य-भाग में है। अतः आशा है कि यदि वे उन अंग्रेज़ी-साहित्य-विशारदों के उच्च भावों का अध्ययन मातृ-भाषा (हिन्दी) के पद्यों में करेंगे, तो एक तो उनके

अत्युच्च भाव उचितरूप से हृदयङ्गम होंगे; दूसरे पद्यमय होने से स्मरण रखने में भी सुविधा होगी।

हिन्दी-पद्य-रचना-कार्य में मेरे परम मित्रवर सिंघई परमानन्दजी हिन्दी अध्यापक सागर ने जो सहायता दी है इसका मैं उनका हृदय से अधिक आभारी हूँ। तथा साहित्य-रत्न पण्डित लोकनाथजी सिलाकारी ने जो समय-समय पर रचना-संशोधन-कार्य में मेरी सहायता की है उनको भी मैं हृदय से धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। मेरे परम मित्र बाबू देवेन्द्रनाथ मुकुर्जी वकील ने जो मुझे इस कार्य के करने में परम उत्साह दिया है उनका भी मैं हृदय से कृतज्ञ हूं।

—अनुवादक

सागर
२३ दिसंबर सन् २८ } गणेशप्रसाद सिंघई

FOREWORD

This is a novel attempt by a leading citizen and merchant of Saugor. Mr. Singhai has kept up his reading, and his love of literature is really note-worthy. That in the midst of his numerous business engagements, Mr. Singhai should have succeeded in snatching odd hours for such a laborious task is due to his peculiarly regular and hard-working habits. Even a cursory reading of the contents of this booklet reveals Mr. Singhai as a Hindi poet of great promise and merit. I wish Mr. Singhai had tried his hand at writing original Hindi poetry. To render Gray, Wordsworth, Southey and similar English poets into Hindi poetry is no easy task—Mr. Singhai has attempted the well-nigh impossible. He must have spent hours of his very valuable time in hunting out beautiful equivalents of the English original ; but his labours have been amply repaid in the artists pleasure that he must have felt in the very act of creation, while in placing such an accurate and beautiful

translation before the Hindi reading public he has rendered a distinct service to the cause of Hindi Literature. I congratulate Mr. Singhai upon the success he has achieved. His felicity of expression coupled with the accuracy of translation place a very good book in the hands of students in our schools.

Mr. Singhai has succeeded in showing that in the hands of a capable artist Hindi can express most abstruse thought very easily and beautifully. I hope Mr. Singhai will soon place some of his other writings before the public.

BRAJRAJ,

M.A., B.SC., LL.B.,

PROFESSOR

ALLAHABAD — Kayastha Pathshala College

24th May, 1929

समर्पण

हिन्दी के साहित्य-विशारद, हिन्दी का हित करने में ।
सतत समय सम्पूर्ण बिताते, हिन्दी-सेवा करने में ॥
उनहीं विमल विवेक बुद्धिवर, गुरू जनों के चरणों में ।
सादर अर्पण है यह पुस्तक, कवियों के कर कमलों में ॥

ओ३म् नमः

जिसने राग, द्वेष, कामादिक, जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष-मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति-भाव से प्रेरित हो हे चित्त! उसी में लीन रहो॥

—मेरी भावना।

सोल एजेण्ट्स—

साहित्य-भवन लिमिटेड,

प्रयाग

प्रकाशक—

बाबू गणेश प्रसाद सिंघई,

सागर

(मध्यप्रदेश)

विषयानुक्रमणिका

List of Poems

क्रम	शीर्षक	पृष्ठ
१—	ग्रे कवि का आर्त्तनाद Thomas Gray's Elegy	१
२—	सौभाग्य जीवन Character of a happy life	६
३—	सदाचारी पुरुष The man of life upright	८
४—	निर्जन भूमि-निवास The solitude of Alexander	८
५—	जीवन की पवित्र तान A Psalm of life	१०
६—	संसारी जञ्जाल The world is too much with us	१२
७—	साहित्य-सेवी Scholar	१२
८—	मेरी जन्म-भूमि My native land	१३
९—	भावी-भावना A Vista	१४
१०—	मेरे पूर्व परिचित मित्र My old familiar faces	१६
११—	एकान्त-वास Ode on solitude	१७
१२—	ईश-वन्दना O' God our help	१८
१३—	हमारा केशुरीना-वृक्ष Our Casuarina Tree	१८
१४—	अबू बिन आदम और देवदूत Abou Ben Adhem	२०
१५—	एक कुटुम्ब का भिन्न भिन्न मरण-स्थान The Graves of a house hold	२१
१६—	सर जान मूर का दफन Burial of Sir John Moore	२२

क्रम	शीर्षक	पृष्ठ
१७—	इञ्चकेप-चट्टान The Inchcape Rock	२३
१८—	स्वामि-भक्ति Fidelity	२५
१९—	सच्ची राज्य-सत्ता The true Imperialism	२७
२०—	मृत्यु-नाद Requiem	२८
२१—	सहानुभूति Sympathy	२८
२२—	गरीबों को पालो Feed the poor	२९
२३—	गुलाम का सपना The slave's dream	२९
२४—	नरगिस का फूल The Daffodil	३१
२५—	नरगिस-पुष्प To Daffodils	३२
२६—	स्वतंत्रता Freedom	३२
२७—	कोयल The Cuckoo	३३
२८—	सुखी योद्धा A happy Warrior	३५
२९—	निर्दोष-आत्मा Innocent Mind	३५
३०—	पवित्र जीवन The Pious life	३५
३१—	स्वतः सन्तोषी Self-content	३६
३२—	वीर-हृदय Heroic heart	३६
३३—	भीरु जन Cowards	३६
३४—	सार्थक मौत Nobel death	३६
३५—	काम Work	३७
३६—	प्रार्थना Prayer	३७
३७—	प्रातः वन्दना Morning prayer	३७
३८—	सुस्त मत रहो Self help	३८
३९—	सब दिन होत न एक समान Not the same	३८
४०—	लघु से वृहत् A little makes Great	३८
४१	साहसी काम Daring spirit	३९

क्रम	शीर्षक	पृष्ठ
३२—	क्रमशः उन्नति A gradual progress	३९
३३—	दयालुता Kindness	३९
३४—	सुख Real pleasure	३९
३५—	चमको-चमको छोटे तारे Twinkle Twinkle little Star	३९
३६—	घड़ी Clock	४०
३७—	खेल और काम Work and play	४०
३८—	गम्भीर भावना The modest Merit	४१
३९—	सत्यता The truth	४१

ग्रे कवि का आर्त्तनाद

'करफ्यू' घण्टा नाद सूचना, दिवस अन्त की लाता है।
बिखरा और रँभाता पशु-दल, चरागाह से आता है॥
थका हुआ अति दीन कृषक भी, हट पश्चात आता गृह ओर।
छोड़ चले जग अन्धकार में, श्यामनिशा मुझको चहुँ ओर॥
अन्धकार छाया था चहुँदिशि, पूरी शान्ति झलकती थी।
चक्कर से उड़ते 'झींगुर' की, अविरल ध्वनि सुन पड़ती थी॥
भेड़ों की चौवाड़ी से जो, अधिक दूर थी बनी हुई।
कभी कभी घण्टी की आहट, सुन पड़ती थी बँधी हुई॥
इसके भी अतिरिक्त सामने, खण्डित जो मीनार खड़ी।
एक लता लिपटी थी उससे, आता था रव घड़ी घड़ी॥
उस उदास उल्लू का जो रव, 'घू घू घू' सुन पड़ता था।
मानो वह शशि से निज दुख की, यही शिकायत करता था॥
जब उसके प्राचीन वास में, अति उजड़े नीरव थल पर।
सुखद राज्य में विघ्न डाल कर, बाधक बनता है आकर॥
भोले भाले ग्रामीणों के पूर्वज, सकरी कबरों में।
हुईं समाधियाँ ढेर-रूप हा! पड़े हुए उन बिबरों में॥
ढेरों पर उनकी कबरों के, तृण-समूह अब खड़े हुए।
'एम' और 'यू' के वृक्षों की, छाया में हैं पड़े हुए॥

५ मन्द सुगन्ध समीर प्रात की, बहती तृण-युत कुटियों पर।
बैठ मधुर गायन करती हैं, 'अबाबील' उनके ऊपर॥
मुर्ग-बाँग वा बिगुल पारधी, समाधिस्थ उन कृषकों को।
सोते से न जगा सकते हैं, पड़े हुए उन मृतकों को॥
६ उन्हें तापने को नहिं गृहिणी, आग प्रचण्ड जलावेंगी।
और नहीं सन्ध्या परिचर्य्या, प्रेम सहित कर पावेंगी॥
अब अबोध बालक उनके सब, बाट न उनकी जोहेंगे।
पकड़ प्यार से पैर पिता के, प्रेम-हेतु नहिं मचलेंगे॥
७ पकी हुई वे फसल खेत की, हँसिया से काटा करते।
'पड़ती' हुई कठोर भूमि को, हल से थे जोता करते॥
जोत मोद से अश्व हलों में, कृषी-कार्य को करते थे।
वन-वृक्षों पर घाव लगा कर, विजयी उन पर बनते थे॥
८ अहो महत्त्वाकांक्षी उनके, हितकर कृत आमोद प्रमोद।
अप्रसिद्ध जीवन विलोक तुम, हँसी उड़ा मत करो विनोद॥
अय गर्वीले विभववान्! इन दीनों की लघु जीवन-गाथ।
सुनकर के उपहास नहीं तुम, करना कभी घृणा के साथ॥
९ कुल का मद अरु राज दबदबा, धन सुन्दरता जग-बढ़ती।
होता नाश चिता में इनका, मृत्यु नहीं टाले टलती॥
हों प्रभावशाली कितने ही, निश्चय मिट जावेंगे हन्त।
अहंकार अरु सम्पति का भी, समाधि में ही होगा अन्त॥
१० मृतक जनों की स्मृतियों में, हैं समाधियाँ बनी हुईं।
गिरजे के चहुँ ओर दीखतीं, शोक-छन्द से रहित हुईं॥
उन पर नहीं चिन्ह अङ्कित जो, इस पर तुम मत इतराओ।
हो मदान्ध अब दीनों को तुम, दोषी कह मत बतराओ॥
११ अर्द्ध मनुष्याकार शिला पर, विवरण अङ्कित करने से।
हो सकता है वह सजीव नहिं, पत्थर पर सब लिखने से॥

टूटी हुई श्वास मृतक की, तन में फिर क्या आ सकती ?
उनके प्रति की गई तान क्या, तन में जोश जगा सकती ?
मरने पर शीतल कर्णेन्द्रिय, पुनः कार्य क्या दे सकती ?
करके श्रवण चापलूसी भी, भला शान्ति क्या ले सकती ?
शायद इस जन-त्यक्त भूमि पर, कुछ भट, वीर-हृदय वाले।
गड़े हुए होंगे इस थल पर, तत्व-ज्योति रखनेवाले॥
अथवा वे भी सोए होंगे, कर राज काज जो सकते थे।
या उनमें के कई व्यक्ति जो, गायक, कवि हो सकते थे॥
हेतु न यश बढ़ने का उनका, अवसर की न हुई अनुरक्ति।
स्वाभाविक जो भरी हुई थी, अन्तरात्मा में वह शक्ति॥
विकसित नहीं कभी हो पाई, कारण ? एक दीनता थी।
इसी हेतु प्रस्फुटित हुई नहिं, प्रकृति-दत्त जो गुरुता थी॥
नील, अगाध जलधि अन्तर्गत, अति गम्भीर गुफा के बीच।
विमल कान्ति मय मणी अनेकों, पड़े हुए रहते मिल कीच॥
लेकर जन्म अदृश्य पुष्प अति, फैलाते हैं मरु पर गन्ध।
खिल करके मुरझाते हैं सब, करती मारुत नष्ट सुगन्ध॥
कृषक दुखद कानून विनाशक, 'हेम्पडेन' बन सकते थे।
गूँगे पशु सम पड़े अभागे, 'मिल्टन' कवि हो सकते थे॥
'क्रॉमवेल' से वीर युद्ध-प्रिय, इन में से हो सकते थे।
व्यर्थ नहीं वे रक्त बहाते, देश-दुःख खो सकते थे॥
राज-नीति परिषद् में भी वे, उत्तम मान सदा पाते।
नहीं विनाश, कष्ट पाने की, कुछ भी वे परवा करते।
उनका भी इतिहास जाति की, आँखों में होता आदर्श।
निज कर्तव्य पालते वे सब, करते अधिक देश-उत्कर्ष॥
केवल उनकी किस्मत ही ने, उनके सद्गुण कुचल दिए।
साथ साथ ही दुर्गुण सारे, उनके चकना चूर किए॥

वञ्चित रहे रक्त-सरिता से, राजासन के पाने से।
दया-द्वार मानव के हित का, थे असमर्थ खुलाने से॥
१८ मिथ्या को नहिं सच्चा कह कर, उनने कभी सुबूत दिया।
स्वाभाविक लज्जा का भी नहिं, कभी उन्होंने घात किया॥
भोग युक्त मदपूर्ण गृहों, में रहनेवाले धनिकों की।
मुँह मीठी कविता कर उनसे, नहिं इनाम की इच्छा की॥
१९ उनने जीवन नहीं अन्य सम, प्रतिद्वन्दी बन पूर्ण किया।
कारण ? सद् इच्छाओं ने भी, सीमा को नहिं चूर्ण किया॥
उनका वह अति सुन्दर जीवन, शून्य गुफा जनवासी सम।
अधिक शान्ति मय एक मार्ग से, सारा जीवन हुआ खतम॥
२० अपमानों से बचने के हित, विमल-अस्थियों को उनकी।
पास पास थी गईं बनाईं, जीर्ण शीर्ण क़बरें सबकी॥
ग्राम्य-अशुद्ध छन्द भी जिन पर, भद्दी कृति दिखलाते थे।
पास गुज़रनेवाले जन से, ठण्डी श्वास खिंचाते थे॥
२१ इनके नाम उमर की वर्षें, ग्राम्य-छन्द में अङ्कित थीं।
उनकी कीर्ति तथा कृत्यों को, करतीं जो सब सूचित थीं॥
बाइबिल के विमल छन्द भी, बिखरे ढँग से अङ्कित थे।
ग्राम्य-निवासी धार्मिक विधि से, मृत्यु-सिखापन में रत थे॥
२२ मानव मौन्य और विस्मृति का, बन शिकार इक दिन जिसको।
करना होगा त्याग हाय इस, सुख-दुख पूरित नर-तन को॥
सुख मय जीवन-सीमा एवम्, सुखद दिवस तजना होगा।
आशा भरी नज़र से जग को, नहीं किसे लखना होगा ?
२३ होने वाली विलग आतमा, प्रेम हृदय पर है निर्भर।
होने वाली बन्द आँख भी, चाह रही प्रेमाश्रु निकर॥
क़बरों के भीतर से प्रकृती, टेर लगा कर कहती है।
अमर वासना सदा ख़ाक में, जीवित होकर रहती है॥

यदि कोई जन मुझ से पूछे, इन मृतकों के बारे में—
मनन किया क्यों इतना गहरा ? उनके वर्णन सारे में ॥
कला हीन उनकी गाथाएँ, लिखी भला क्यों छन्दों में ।
उत्तर भी तब होगा मेरा, निम्नि लिखित यों छन्दों में—
"मेरे सदृश बैठ यहाँ पर, यदि तुम भी कुछ सोचोगे ।
मेरी भी क्या हालत होगी ? इस पर ही तुम पहुँचोगे" ॥
"शायद इसका सच उत्तर ये, देगा कोई वृद्ध किसान ।
प्रति दिन उठ प्रातः 'ग्रे' आता, ओस युक्त वाले मैदान ॥
ओस घास पर जो बिखरी थी, उसे कुचलता आता था ।
देखा भी मैंने है उसको, जल्दी जल्दी जाता था ॥
चढ़ कर फिर अति उच्च स्थल पर, खड़ा खड़ा देखा करता ।
सुन्दर सूर्य उदय कब होगा ? जग का अन्धकार हरता" ॥
"वायु-वेग से हिलते वट की, थीं अति जो प्राचीन जड़ें ।
एक दूसरी से गुथ कर वे, ऊपर उठी हुई उमड़ें ॥
इस प्रकार के वृक्ष तले वह, भद्र व्यक्ति दोपहरी में ।
खूब पसर कर लेटा करता, लहराता सुख लहरी में ॥
उसी विटप के अधिक निकट ही, कल कल कर नाला बहता ।
जिसे सदा वह बड़े प्रेम से, प्रति दिन था देखा करता" ॥
"कभी कभी वह निकट विजन के, जाकर घृणित हास्य भरता ।
भ्रमण समय ही निज विचार वह, अति अस्पष्ट प्रकट करता ॥
कभी कभी वह हो निराश अति, निन्दित लोगों के सदृश्य ।
अति उदास हो जाता था फिर, हास्य सभी होता अदृश्य ॥
होता था अति चिन्तित वह फिर, पात्र प्यार का नहीं समझ ।
हेतु निराशा का भी यह था, थी उसकी जो यही समझ ॥
"एक दिवस प्रातः किसान ने, उसे उच्च उस चोटी पर ।
अथवा जङ्गल के समीप भी, देखा नहीं विटप के तर ॥

नहीं दूसरे दिन भी उसको, पाया नाले के तट पर।
जङ्गल में भी दिखा नहीं वह, नहीं हरित हरियाली पर" ॥

२९ "अतिशय समारोह के सँग में, एक दिवस शव-यान लिए।
गिर्जा-पथ पर दिखे मुझे जन, शोक-छन्द की तान किए॥
आकर आप समाधि सन्निकट, जहाँ खड़े कंटक तरु-वृन्द।
पढ़िए खूब गौर से उनको—पत्थर पर जो अङ्कित छन्द" ॥

(कवि की समाधि पर का शोक-छन्द)

३० हाय ! आज यह 'ग्रे' सा कवि भी, सुखद गोद भू-माता की।
सदा काल को शयन कर रहा, मरजी विश्व-विधाता की॥
यद्यपि वञ्चित रहा तरुण यह, यश वैभव से जीवन भर।
किन्तु सदय थी वाक्-दायिनी, अनुकम्पा थी अति इन पर॥
अतिशय उदासीनता ने भी, अपने गुरुतर पञ्जे में।
फँसा लिया था इन्हें जन्म से, भीषण इसी शिकञ्जे में॥

३१ सहानुभूति भारी थी इनमें, निश्छल अन्तरात्मा थी।
ईश्वर ने भी बड़ी दैनगी, इन्हें सदय प्रदान की थी॥
हत् भागी पुरुषों को देने, करुणा मय आँसू ही था।
जिसे ईश ने सहानुभव हित, मित्र सदृश्य ही भेजा था॥

३२ गुण दोषों पर इनके आगे, नहिं विचार करना अब है।
वह सभीत कम्पित आशा मय, ईश-न्याय पर निर्भर है॥

सौभाग्य जीवन

१ उस नरोत्तम व्यक्ति का, जग-जन्म-जीवन धन्य है।
धन्य है शिक्षा उसी की, जो जगत में गण्य है॥
सुविचार जिसके अङ्ग-रक्षक, हैं सदा ही शान से।
सत्यता, स्वातन्त्रता भी, है जिसे प्रिय प्राण से॥

रखता सदा अधिकार में, जो वासनाएँ सर्वथा।
आतमा भी काल से, पाती नहीं जिसकी व्यथा॥
चिन्ता कभी संसार की, विचलित जिसे करती नहीं।
परवा नहीं आलोचना की, कीर्ति की इच्छा नहीं॥
पर की अचानक वृद्धि पर, रखता न ईर्षा-भाव जो।
दुर्गुणों से दूर रह, रखता विवेकी भाव जो॥
निज प्रशंसा सुन जिसे, गड़ते हैं गहरे शूल से।
राज नैतिक नियम जिसको, दीख पड़ते धूल से॥
हैं नियम जिसके ज्ञान मय, बस-ज्ञान ही आधार है।
सद्‌गुणों के हेतु ही वह, धन्य सौ सौ बार है॥
उड़ती नहीं अफ़वाह जिसकी, जो विवेक-निधान है।
चाटुकारों का न जिसके, द्रव्य से उत्थान है॥
ज़ालिम कभी अन्याय से, उसकी हरण कर शक्ति को।
लाभ पा सकता नहीं, करके पतित उस व्यक्ति को॥
करता सदा जो प्रार्थना, इस बात को भगवान से।
प्रेम मुझको है नहीं, संसार के धन, मान से॥
चाहता केवल यही हूँ, हो अनुग्रह सर्वदा।
दैनगी भारी यही है, चाहिए नहिं सम्पदा॥
शान्ति मय सब काल बीते, धर्म के आख्यान में।
और नित अनुरक्ति होवे, सज्जनों के मान में॥
मुक्त रहता है सदा वह, दासता की ग्लानि से।
रखता न आशा वृद्धि की, डरता नहीं वह हानि से॥
होकर न शासक राष्ट्र का, वह स्वयम् ही सम्राट है।
होकर न कुछ भी पास में, वह सर्व से सु-विराट है॥

—सर एच० वॉटन

सदाचारी पुरुष

१ आतमा जिसकी सदा, निर्दोष या निष्कलङ्क है।
दुष्कृत्य वा मिथ्या विचारों, से रहित जयवन्त है॥
२ जीवन सदा जिस व्यक्ति का, आनन्द मय गम्भीर हो।
सुख दुख सभी सम भाव से, जो भोगता नर वीर हो॥
आशा कभी संसार की, धोखा न दे सकती उसे।
दुख की भला क्या है चली, जो बस रुला सकता उसे॥
३ चाहिए ना जिरह-बख्तर, अङ्ग-रक्षा के लिए।
गढ़ भी जिसे प्रिय हैं नहीं, निज प्राण-रक्षा के लिए॥
वज्र के भी पात से, भयभीत वह होता नहीं।
खोजता ना कन्दरा, चल भाग छिपने को कहीं॥
४ गहरे भयानक जलधि से, चिन्तित कभी होता नहीं।
धक्का प्रबल तूफान का, भयभीत कर सकता कहीं?
५ दुर्भाग्य या सौभाग्य से, आती उसे जो आपदा।
सानन्द उसको झेल कर, वह दूर करता है सदा।
बस—ईश-निर्मित सृष्टि का, वह मनन करता सर्वदा।
प्रकृति से ही ज्ञान पाकर, शान्त रहता है सदा॥
६ सु-विचार ही हैं मित्र उसके, श्रेष्ठजीवन-सम्पदा।
बन कर पथिक संसार का, वह शान्ति पाता सर्वदा॥

—टी० केम्पिन

निर्जन भूमि-निवास

१ करूँ जहाँ तक दृष्टि वहाँ तक, का मैं ही हूँ अधिकारी।
प्रतिवादी भी नहीं कोइ है, अद्‌भुत राज्य-नृपति भारी॥

मध्य द्वीप से लेकर हूँ मैं, चारों ओर जलधि-तट तक।
पशु पक्षी गण सबका स्वामी, नहीं कोइ बढ़ कर अब तक॥
निर्जन भूमि! कहाँ है तेरा? मनहारी वह सुन्दर रूप।
लखा जिसे मुनियों ने ही वह, मुख पर तेरे नित्त चिद्रूप॥
होता मग्न व्याधि चिन्ता में, यदि जीवन में होते त्रास।
पर—ऐसा भय पूर्ण देश लख, होता हूँ मैं घोर उदास॥
जहाँ आज है वास हमारा, अन्य जनों को अगम प्रदेश।
यहीं अकेला रह कर क्या मैं, काटूँगा हा! जीवन शेष॥
होती नहीं कर्ण गोचर हा! अन्य जनों की मधुर गिरा।
निज के शब्द श्रवण करते ही, भ्रम मय होता चकित निरा॥
आते नज़र जीवधारी जो, निर्जन थल के चारों ओर।
अति असावधानी से लखते, निडर भाव से मेरी ओर॥
कभी नहीं देखा है जिनने, मनुज जाति को इस थल पर।
अति सीधापन उन जीवों का, देता चोट हृदय-तल पर॥
समिति, मित्रता, प्रेम—तीन गुण, दिये प्रकृति ने सब जन को।
कर इनका सन्मान हृदय से, प्रमुदित करता निज मन को॥
यदि सपक्ष होता कपोत सम, उड़कर करता इनमें वास।
सत्य, धर्म के पथ पर चल मैं, शेष दुखों का करता नाश॥
करता ज्ञान प्राप्त वृद्धों से, सफल मनोरथ हो जाता।
खेल युवा सँग आयु बिताता, मनोमुग्ध हो सुख पाता॥
धर्म सु-तत्व स्वर्गीय नाम में, क्या अद्‌भुत निधि छिपी हुई।
स्वर्ण रूप अनमोल वस्तुएँ, पृथ्वी भर की लिपी हुई॥
गिरजे के घण्टे की ध्वनि से, वञ्चित हैं ये गिरि-कन्दर।
दुखी न होता शोक-नाद सुन, नहीं प्राप्त हा! रविमन्दर॥
हूँ हे वायु खिलौना तेरा, ले आ तू निर्जन-तट में।
प्रेम-सँदेशा मातृ-भूमि का, हूँ असमर्थ पलटने में॥

मित्र भला क्या मेरी चिन्ता, करते होंगे कहीं कभी?
हैं जो मित्र अभी क्या उनसे, कहो न होगी भेंट कभी?
६ कितनी शीघ्र गामिनी है यह, देखो तो इस मन की चाल।
सूर्य-किरण अरु पवन-झकोरा, पार न पाते हैं त्रै-काल॥
सुधि आती जब जन्म-भूमि की, पहुँच वहाँ जाता तत्काल।
पर उत्साह भङ्ग हो जाता, करता हूँ जब तट का ख्याल॥
७ जाते हैं निज स्थानों को, पशु-पक्षी जब होती शाम।
ठीक समय पर मैं भी जाता, करने आश्रम में विश्राम॥
दया व्याप्त सर्वत्र ईश की, देती नर-आत्मा को धीर।
सञ्चारित कर शान्ति चित्त में, भाग्य-भरोसे सहता पीर॥

—डब्ल्यू० काउपर

जीवन की पवित्र तान

१ शोकित स्वर में कहो न मुझ से, मानव-जीवन स्वप्न समान।
आत्म-शक्ति का वास नहीं है, आलस-भोगी में सच जान॥
अतः सभी जन यह सच जानो, कभी बाहिरी चीज़ों पर।
नहीं भरोसा करना किञ्चित, तुच्छ समझना निज जी भर॥
२ जीवन सार्थक है इस जग में, नहीं चिता अन्तिम परिणाम।
पंच तत्व से देह बनी यह, पाता है जिनमें विश्राम॥
मरता है केवल यह नर-तन, भस्म इसी की होती है।
सदा अमर है एक आत्मा, कभी नहीं यह खोती है॥
३ सुख दुख के बन्धन से जीवन, नहीं कभी जग में जकड़ा।
और नहीं इस बन्धन ने भी, यही ध्येय अन्तिम पकड़ा॥
अतः कार्य संलग्न रहो नित, कुछ ना कुछ करते जाओ।
होवे उन्नति जिससे अपनी, सफलकार्य हो यश पाओ॥

इस जग में विज्ञान कलादिक, पाए जाते अपरम्पार।
जिनका अर्जन करने के हित, समय चाहिए अति विस्तार॥
पर, जीवन अति ही थोड़ा है, हृदय साहसी भारी है।
श्वास-नगाड़ा निशिदिन बजता, करता चिता—तयारी है॥
जीवन की संग्राम-भूमि में, घोर दुःख औ कष्टों को।
सदा जीत कर रहो सु-रक्षित, मार भगाओ दुष्टों को॥
उनके साथ हमेशा लड़कर—शीघ्र विजय उन पर पाओ।
विजित बनो नहिं मूक पशु सम, सैनिक बन कर यश पाओ॥
सुखद भविष्य-काल यदि होवे, उस पर मत विश्वास करो।
भूत-काल के सुख दुख भूलो, वर्तमान में कार्य करो॥
हृदय बनाओ वीर साहसी, अटल नियम यह ध्यान धरो—
ईश्वर भी है सदा सहायक, इस पर निज विश्वास करो॥
सज्जन पुरुषों का जग-जीवन, सूचित करता हमें पुकार।
"तुम भी अपना जीवन जग में, कर सकते हो इसी प्रकार"॥
रेणु-समान समय पर अपने, पद-चिन्हों को जाते छोड़।
अन्य पुरुष भी देख चलेंगे, इसी हेतु ही आते छोड़॥
दारुण दुःख-ग्रसित पुरुषों की, जीवन-नौका जर्जर हो।
सज्जन पुरुषों का चरित्र लख, साहस मय उनका उर हो॥
अतः पूर्ण कर्तव्य समझ कर, करलो पूर्ण परिश्रम को।
लगे रहो सत्कर्मों में नित, डरो न रंच भविष्यत को॥
कठिन कार्य को हल करने का, उत्तम पाठ सदा सीखो।
पीछे पूर्ण शान्ति से अपने, कर्तव्यों का फल चीखो॥

—एच० डब्ल्यू० लाङ्गफैलो

संसारी जञ्जाल

१ विषय-वासना के प्रवाह में, बहते जन सब संसारी।
सर्व शक्ति का दृढ़ प्रयोग कर, बनते हैं ये अधिकारी॥
त्याग परम सुख मूर्ख सभी वे, विषयों में रहते हैं चूर।
धन-संचय में आयु बिताते, प्रकृति-प्रेम से रहते दूर॥
चन्द्र-किरण-स्पर्श मात्र से, जलधि तरंगें भर लेता।
सन्तत पवन-प्रवाह सुखद भी, मुग्ध चित्त को कर देता॥
परम मनोहर प्रकृति-दृश्य से, प्रमुदित हम नहिं हो पाते।
है अपूर्व सौन्दर्य प्रकृति का, क्योंकर कवि जन गुण गाते॥
ईशु हमारी यही भावना, क्रिश्चियन से 'पेगन' होता।
कल्पित कर देवों को उसमें, पूजक बन मैं सुख पाता॥
प्रकृति ! तुम्हारी रम्य-भूमि पर, कभी कभी विचरण करता।
हृदय बीच गढ़ मूर्ति रूप की, धन्य जन्म अपना लखता॥
सिन्धु-तरंगों की उछाल लख, 'प्रोटस' का करता मैं ध्यान।
सुखद वायु का नाद श्रवण कर, 'ट्रीटन' का करता अनुमान॥

—वर्ड्सवर्थ

साहित्य-सेवी

१ बीते दिवस हमारे सारे, पूर्व जनों के जीवन में।
जब जब दृष्टिपात करता हूँ, पाता हूँ उनको संग में॥
उनके रचित वृहद् ग्रंथों का, पाठ निरन्तर करता हूँ।
ये ही मित्र सदा के साथी, जिनसे नहीं बिछुड़ता हूँ॥
२ सुख में तो अति हर्ष बढ़ाते, दुख में बनते हैं आधार।
करके मनन गुणों का उनके सब का होता बेड़ा पार॥

हृदय-पटल पर बोझ ऋणों का, धड़ता है उनका भारी।
अविरल आँसू धार कपोलों, पर से हो जाती जारी॥
पूर्वजनों के सदा साथ में, रहते मेरे पूर्ण विचार।
सदा साथ रह चुके उन्हीं के, उनसे ही सीखा आचार॥
करता मान सदा सु-गुणों का, क्षोभित होता भूलों पर।
आशा और भीरुता उनकी, छा जाती मेरे मन पर॥
खोज लगा, कर प्राप्त सु-शिक्षा, प्रेम, प्रमोद बढ़ा देते।
जगत-जीवनी-नौका की हम, हो विनीत शिक्षा लेते॥
मेरी सब आशाएँ जग की, पूर्व जनों पर हैं निर्भर।
वास उन्हीं सँग होगा मेरा, करूँ यात्रा जीवन भर॥
करता हूँ विश्वास हृदय से, नाम काल नहिं खावेगा।
धूल समान नाम यह मेरा, कभी न उड़ने पावेगा॥
—राबर्ट सौदे

मेरी जन्म-भूमि

है ऐसा नर अधम, जगत में जीवित हो जो।
मुख से अपने बात, न ऐसी कहता हो जो—
"जन्म-भूमि अभिराम, यही है मेरी प्यारी।
न्योछावर है तीन लोक, की सम्पति सारी"॥
सप्त सिंधु कर पार, विदेशों में भूला हो।
पर, घर आती बार न, जिसका मन फूला हो॥
यदि ऐसा हो कोई—शीघ्र ही उसको देखो।
भली भाँति अवलोक, नीच तुम उसको लेखो॥
चाहे पदवी होवे, जग में उसकी भारी।
फैला होवे नाम, जानती दुनियाँ सारी॥

इच्छा के अतिरिक्त, पास में अगणित धन हो—
पर न प्रशंसक उसका, कोई भी कवि जन हो॥
कारण ? अति स्पष्ट, "स्वार्थ में समय बिताया"।
मन स्वदेश-हित हेतु, कभी वह तनिक न लाया॥
पड़ा रहा धन मान, जगत में एक किनारे।
आये जब यम-दूत, बजाते मौत-नगारे॥
सुन्दर, सच्चा मान न हा ! जीवन में पाया।
जिस मिट्टी से बना, उसी में पुनः समाया॥
मरने के पश्चात्, न कोई याद करेगा।
द्विगुण मृत्यु से पतित, अधम वह व्यक्ति मरेगा॥

—सर वाल्टर स्काट

भावी-भावना

१ इस आयोजन-संग्रह से इक, सभ्य जाति वैसी होगी।
जिसका जन्म आज तक जग में, नहीं हुआ ऐसी होगी॥
उसकी अन्तरात्मा से, स्वातन्त्र्य-ज्योति का विमल प्रकाश।
नेत्रों से भी प्रकटित होकर, पावेगा विज्ञान विकाश॥
२ दूर रहेंगे छल छद्मों से, सभी तरह होंगे अकलंक।
नृपति पुजारी नहीं रहेंगे, भाव न होगा राजा रंक॥
होगा नहिं संग्राम परस्पर, होगा नहीं सन्धि का नाम।
संधि, युद्ध की तुला बनाकर, कुटिलों का नहिं होगा काम॥
३ वीर, सशक्त, सभ्य अति होंगे, व्यर्थ न रक्त बहावेंगे।
क्षिति, जल, अनल, अनिल पर भी वे, निज अधिकार जमावेंगे॥
४ राष्ट्र-राष्ट्र सँग देश-देश सँग, गले गले लग जावेंगे।
बन जावेंगे मित्र परस्पर, प्रीति परस्पर पालेंगे॥

भ्रातृ-प्रेम आवेश पूर्ण हो, उनका मन मस्तक सारा।
फड़क उठेगा पूर्ण वेग से, होगा झट भाई-चारा॥
५ होगा गृह-जीवन अति सादा, सार्वजनिक कृत हो बढ़ कर।
राज-भवन के भीतर प्रति दिन, ईश-भजन होंगे जी-भर॥
६ वन, उपवन, गिरिजाघर, कमरे, कुञ्ज 'गेलरी' में मिलकर।
बाल तरुण वा वृद्ध सभी जन, आत्म-ज्ञान पावें मिलकर॥
७ भव्य नारियाँ सभी कार्य में, देंगी मिल पुरुषों का साथ।
मातृ-भाव का विमल मुकुट, भौंहों पर होगा शोभित माथ॥
८ प्रकटेगी आदर्श-मित्रता, जिसे नहीं बहुधा समझे।
भू-तल भर के कविगण जिसको, हैं अब तक आधा समझे॥
उस सर्वोत्तम सत्य मित्रता, का तारा झट प्रकटेगा।
शान्त-स्वच्छ जन-हृदय-गगन में, पूर्ण दीप्त हो चमकेगा॥
९ सुन्दर बालक दूत—ईश ढिग, प्रभु-गुण की ज्यों तान भरें।
मनुज मात्र सब शुद्ध हृदय से, मिल भविष्य में प्रेम करें॥
१० नित नूतन आविष्कारों का, होगा जग में विशद विकाश।
प्रबल तान अति ऊँचे स्वर से, गुञ्जित कर देगी आकाश॥
गान-तान सम होगा जीवन, प्रति जन का इस भूतल पर।
स्वर्णमयी सब पृथ्वी होगी, बने स्वर्ग भू-मण्डल पर॥
११ पाप शरम का नाम मिटेगा, दुःख वासना बनी रहें।
ईश्वर ढिग सब समान होंगे, प्रेम-रज्जुएँ तनी रहें॥
१२ होंगे नहिं जब हम सब भाई, होगा सुखी भविष्य महान।
कही हुई ऊपर की बातें, होंगी नहिं वे स्वप्न-समान॥
एक समय वह शुभ स्वर्ण मय, दिन निश्चय से आवेगा।
आने पर इन सब बातों में, परिवर्तन हो जावेगा॥

—जे० ए० साइमण्ड्स

मेरे पूर्व-परिचित मित्र

१ जिनके सँग शाला जीवन के, दिन मेरे सुख पूर हुए।
हाय ! पुराने परिचित मेरे, सभी मित्र गण दूर हुए॥
२ मैं अपने प्रेमी मित्रों सँग, रहा हास्यमय जीवन भर।
निशि में उनके संग देर तक, मद्य-पान करता मन भर॥
करता था मैं भी उनके सँग, हो-हल्ला दिन अधिक हुए।
हाय ! पुराने परिचित मेरे, सभी मित्र गण पृथक हुए॥
३ थी अति सुन्दर एक प्रेमिका, करता था जिस को मैं प्यार।
किन्तु, हाय ! अब बन्द हुआ है, उस प्यारी का वह प्रिय द्वार॥
अब तो दर्शन भी दुर्लभ हैं, सुख मय दिन सब पूर हुए।
हाय ! पुराने परिचित मेरे, सभी मित्र गण दूर हुए॥
४ मेरा एक दयालु मित्र था—जैसे जग में मिलते कम।
अकृतज्ञ सा त्यागा उसको, इस प्रकार भूले थे हम॥
किन्तु, पुराना इष्ट-मित्र वह, हृदय हमारे में रहता।
उस मुख का वह चित्र हमारे, हृदय-पटल पर आ खिचता॥
५ प्रेत समान भ्रमण मैं करता, बचपन के क्रीड़ा-थल पर।
कहाँ गये हा ! परिचित मुख सब, ढूँढ़ फिरा जगतीतल पर॥
दिखता है जग मरुस्थली सा, उस पर चलना ही होगा।
अपने परिचित मित्रों को तो, खोज लगा पाना होगा॥
६ ऐ मेरे हृदयेश मित्र तू, भाई से भी प्यारा है।
क्यों नहिं जन्म लिया मेरे घर, मुझ से अब तक न्यारा है॥
बनते दोनों भले सहोदर, सुख से पूरे दिन भरते।
बैठ पुराने मित्रों की ही, हम चर्चा निशि दिन करते॥
७ किसी तरह कोई ने अपना, यह जग-जीवन भोग लिया।
कोई किसी तरह से बिछुड़े, मुझे किसी ने छोड़ दिया॥

अब सब मुझसे पृथक् हुए हा! मेरे सब सुख धूर हुए।
हाय! पुराने परिचित मेरे, सभी मित्रगण दूर हुए॥
—सी० लेम्ब

एकान्त-वास

१ संसार में सच्चा परम सुख, प्राप्त होता है उसे।
पा पूर्वजों की भूमि को, आनन्द अति होता जिसे॥
सन्तोष रख जो मुग्ध रहता, जन्म-भू की वायु पर।
जीवन उसी पर कर निछावर, रह सुखी वह आयु भर॥
२ धेनु के पी दूध को, रहता सुखी वह सर्वदा।
खेत से पा अन्न को, जीवन बिताता है सदा॥
ऊन पाकर भेड़ से, वह ढाँकता है आप को।
वृक्ष-छाया ग्रीष्म में, पा नाश करता ताप को॥
पा काठ वृक्षों से भला, वह उष्ण करता देह को।
मग्न हो निज कार्य में, रखता मनोहर ध्येय को॥
३ बीतता दिन शान्तिमय वा, स्वास्थ्य की सम्भाल में।
वर्ष, घण्टे, रात, दिन, नाहिं बीतते जग-जाल में॥
४ ले घोर निद्रा रात में, अध्ययन सदा सुख से करे।
प्रमुदित सदा रह चित्त में, वह खेद सब मन से हरे॥
ध्येय रख निर्दोष कृति का, विमल-सुखमय शान्त हो।
करता निरूपण तत्व का, ज्ञानी बना निर्भ्रान्त हो॥
५ जीवन हमारा जगत में, सु-अदृश्य अरु अज्ञात हो।
शोकित न हो कोई मनुज—इस देह का जब पात हो॥
चिन्ह भी मेरा न हो, जग में, समाधि-असार का—
विश्व ले मुझको छिपा, मैं हूँ पथिक संसार का॥
—एलेक्ज़ेण्डर पोप

ईश-वन्दना

नाथ हमारे सङ्ग युगों युग, बने रहे तुम हितकारी।
आशा भी ऐसी करता हूँ, सदा रहो मम उपकारी॥
रहा एक अवलम्ब तुम्हारा, इस संसार-समर थल में।
अन्तिम आश्रयदाता भी तुम, होगे अजर अमर पद में॥
सदा छत्र-छाया में तेरी, योगी रहें सुरक्षित हैं।
भुज-बल से तेरे निश्चय ही, हम सब भाँति सुरक्षित हैं॥
क्षिति, गिरि की रचना के पहिले, नाथ सदा तू व्याप्त रहा।
अजर, अमर, अक्षय हे प्रभुवर, अब तक वैसा प्राप्त रहा॥
प्रभो! आपकी सदय दृष्टि में, सहस वर्ष इक निशा समान।
शीघ्र प्रभात रात्रि से होता, अन्तिम प्रहर रात्रि अनुमान॥
काल नदी के है प्रवाह सम, जनका करता सन्तत घात।
उन्हें भूल हम यों ही जाते, रात्रि-स्वप्न ज्यों होते प्रात॥
प्रभो! रहो तू सदा सहायक, यही निवेदन नित होगा।
जीवन-रक्षा कर मरने पर—तू ही मुझे शान्ति देगा॥

—डाक्टर वॉट्स

हमारा केजुरीना-वृक्ष

केजुरीना नामक वट से, लिपटी लता भुजंग समान।
गड्ढे भी थे कई पींड़ पर, थी चोटी तक लिपटी आन॥
लिपटे लता किसी वट से यदि, तो नहिं वह हरया पाता।
पर वह अति ऊँचा बढ़ करके, पट समान था अपनाता॥
सुन्दर-तरु की शाखाओं पर, लाल पुष्प थे चारों ओर।
उन पर दिन भर मधु-मक्खी मिल, पक्षी गण करते थे शोर॥

जब सब जन निशि में निद्रा से, करते थे श्रम का अवसान।
तब बागीचे में होता था, अविरल, मधुर, सुरीला गान॥
प्रातःकाल हमारी खिड़की, खोली जब जब जाती थी।
तब तब पहिले दृष्टि हमारी, वट पर ही पड़ जाती थी॥
कभी कभी—पर शीत-काल में, भूरा बन्दर आता था।
बैठ अकेला चोटी पर वह, मूर्ति समान दिखाता था॥
सूर्योदय की बाट जोहता, बाल-कीश उछलें डोलें।
कोयल भी निज मधुर तान से, प्रात-काल स्वागत बोलें॥
तरु-तल से अलसानी गाएँ, चरागाह जाती दिखतीं।
वट की छाया विस्तृत सर पर, अति रमणीय जान पड़तीं॥
उसके नीचे श्वेत-कमल खिल, अति ही सुन्दर दिखते थे।
हिम-ढेले से हमें सभी वे, श्वेत श्वेत लख पड़ते थे॥
नहीं प्यार करने का कारण—इस तरु का ऊँचापन है।
"खेलीं पहिले संग सहेली", यही प्यार का कारण है॥
हे प्यारी पहिले की सखियो! समय याद वह आता है।
वह चलती है धार अश्रु की, पूर्व दृश्य खिंच जाता है॥
ओह! भला क्या सिन्धु-नाद सा, घर घर घर घर सुन पड़ता।
भास यही होता है मुझ को, जलधि कूल से टकराता॥
हा! यह तो इस पादप का ही, शोक-नाद सन्ताप सुना।
भीषण भाषण शायद इसका, रहे न पहुँचे स्वर्ग बिना॥
प्रेम नहीं जिसका सच्चा है, स्वर्ग उसे अज्ञात रहा।
पर सच्चे प्रेमी जन को तो, स्वर्ग सदा ही ज्ञात कहा॥
आह! यही सन्ताप-नाद तो, सुना दूर उपसागर में।
सोते थे जब सिन्धु-प्रेत-गण, गुफा-मध्य वे सागर में॥
टकराती थीं जलधि तरंगें, इटली और फ्रांस-तट पर।
पूर्ण चन्द्रमा नभ-मण्डल में, रहता था अति मुसका कर॥

भू-तल पर के सारे प्राणी, निद्रा-वश सोने लगते।
वही मधुर संगीत हमारी, दृष्टि-तले नचने लगते॥
ऐ विशाल वट तेरी मूरत, वैसी ही अब भी दिखती।
जैसी प्यारी जन्म-भूमि में, मनहारी अति थी दिखती॥
करती हूँ मैं तुझे समर्पण, ऐ! वट खुश हो कविता एक।
प्रिय मित्रों को था अति प्यारा, सोए हैं जो स्वर्ग अनेक॥
मरने के पश्चात् हमारे, गौरव तेरा बना रहे।
जैसे 'बारोडेल' सु-वट अति, सदा अमर अरु घना रहे॥
जिसकी भीषण शाखाओं के, नीचे पोली कँपती हुई।
आशा, मृत्यु, काल, तन पिंजर, की इक छाया दिखती हुई॥
हैं असमर्थ छन्द ये मेरे, वर्णन तेरा करने में।
पर-विश्वास मुझे पूरा है, होगा अमर विसरने में॥

—तरुदत्त।

अबू बिन आदम और देवदूत

एक रात अबू बिन आदम, घोर स्वप्न में जाग पड़े।
देखा जब कमरे को अपने, हुए महाशय चकित बड़े॥
शुभ्र चन्द्रिका की आभा से, सारा कमरा व्याप्त हुआ।
चमक दमक कमरे की मानों, खिला कमल है प्राप्त हुआ॥
एक ओर को एक फरिश्ता, लिखता था कुछ अपने आप।
स्वर्ण सरीखे रँग की पुस्तक, लेकर बैठा था चुपचाप॥
अधिक शान्ति ने बिन आदम को, पूर्ण साहसी बना दिया।
"लिखता है तू यह क्या भाई?" बिन आदम ने प्रश्न किया—
दिया दूत ने उत्तर झट से, "लिखता हूँ मैं उनके नाम—
रखते हैं जो प्रेम ईश से, है यह प्रतिदिन मेरा काम"॥

अबू ने तब फिर से पूँछा, क्या मेरा भी नाम लिखा ?
उत्तर में—'ना' सुनकर उनको, मात्र एक अवलम्ब दिखा ॥
विनय सहित अति प्रेम-भाव से, बिन आदम फिर से बोले—
"करते हों जो प्यार नरों से", उसी जगह मुझको लिखले ॥
लिख कर उनका नाम दूत फिर, झटपट अन्तर्द्धान हुआ।
विमल ज्योति से अगली निशि में, दूत पुनः अवतीर्ण हुआ ॥
लगा दिखाने नाम अबू को, जिन पर प्रभु का प्यार हुआ।
सर्व प्रथम था नाम अबू का, पढ़ कर अति आनन्द हुआ ॥

—ले० हण्ट

एक कुटुम्ब का भिन्न भिन्न मरण-स्थान

इन बच्चों का जीवन सँग में, फूल तुल्य था खिला हुआ।
एक साथ रहने के कारण, सुख मय गृह था बना हुआ ॥
किन्तु हाय उन प्रिय बच्चों का, पृथक पृथक थल मरण हुआ।
विकट जलधि वा निकट गिरों के, या सरिता ही शरण हुआ ॥
प्रेमी माता निशि में उनके, निद्रा संयुत शीशों पर।
हो आनन्दित चुम्बन करती, प्रेम सहित नीचे झुक कर ॥
जिसकी आँखों के सम्मुख, कलियों सम बच्चे सोए।
हाय ! हृदय के टुकड़े मेरे, आज कहाँ तुम हो खोए ॥
अन्तर्गत उत्तर अमेरिका, सघन जंगली सरिता-तीर।
ढँकी हुई वन वृक्षों से जो, मरा एक बच्चा पा पीर ॥
अमेरिका के मूल निवासी, उसका पता बताते हैं।
"सीडर" वृक्षों के जंगल में, उसकी कबर दिखाते हैं ॥
अतल जलधि में बच्चा मेरा, था द्वितीय जल मग्न हुआ।
परिचित लोगों को अति प्रिय था, हृदय उन्हीं का भग्न हुआ ॥

उस समाधि के आस पास में, मोती बहु पाए जाते।
कोई भी उस समाधि पर दुख, कभी नहीं दरशा पाते॥
एक पुत्र का मरण हुआ था, स्पेन देश के दक्षिण में।
जहाँ प्रसिद्ध वीर सोए हैं, उस रण-चण्डी उपवन में॥
उस बच्चे के मरने पर हा! झण्डे का ही कफन किया।
अच्छी तरह लपेट उसी में, युद्ध-स्थल में दफन किया॥
हाय! एक मेरी पुत्री का, इटली में था मरण हुआ।
वायु-वेग से पत्ते हिलते, मँहदी-तरु-तल कबर हुआ॥
उस प्यारी सुन्दर बेटी का, इटली के पुष्पों-जैसा।
कुम्हला कुम्हला मरण हुआ, निर्दयी विधाता है कैसा॥
उसी लहलहे तरु के नीचे, मिलकर खेला सदा किए।
हाय आज वे पृथक पृथक हो, सदा काल को बिदा हुए॥
सदा जनक जननी-छाया में, अति हिल मिल कर रहते थे।
एक साथ मिलकर इक स्वर में, ईश-वन्दना करते थे॥
मधुर मन्द मृदु मुसकाहट में, सारा गृह खिल जाता था।
उनका जीवन सुखी गीत-सम, प्रेम प्रमोद बढ़ाता था॥
मिलने की यदि भला स्वर्ग में, आशा-डोर न यों होती।
तो शायद इस भूतल पर भी, कदर प्रेम की क्यों होती॥

—एफ० हेमन्स

सर जान मूर का दफन

उठा लाश ले चले शीघ्र हम, गढ़ी तरफ दीवालों तक।
किया किसी ने नहीं ढोल-रव, हुआ न शोक-नाद अब तक॥
किया दफन जिस जगह वीर को, दी न सलामी तोपों की।
नहीं साथियों ने मिल कर भी, रीति समेत बिदाई की॥

हमने अपनी संगीनों से, घास युक्त धरती खोदी।
अर्द्ध रात्रि के अन्धकार में, लाश वीर की दफना दी॥
खुदे हुए फिर ढेले लेकर, लाश वीर की ढाँकी थी।
चन्द्र-ज्योति धुँधली सी ही थी, बत्ती धीमी जलती थी॥

३ कफ्फन में ना लाश लपेटी, और न रक्खी अर्थी में।
किन्तु, वीर-विश्राम हेतु सम, रक्खा फौजी वर्दी में॥

४ पढ़ी गई संक्षेप प्रार्थना, शोक युक्त कुछ ना बोले।
अगले दिन का चिन्तन करके, खड़े रहे सब दृग खोले॥

५ जब समाधि हम खोद रहे थे, करते थे सिर रखने सम।
यही सोच था कहीं अचानक, शत्रु न आकर रखें कदम॥

६ वे उसकी स्वर्गीय आतमा, का अपमान करेंगे सब।
मिट्टी पर भी दूषण देंगे, चिंता क्या उसको है तब?
जब तक दुश्मन उसे शान्ति से, सोने देंगे भू-भीतर।
जहाँ ब्रिटिश सर्दारों ने मिल, गाड़ा उसको आदर कर॥

७ दफन-क्रिया आधी हो पाई, घड़ी कूच करने कहती।
सुना शत्रु का तोप-नाद भी, वे निशान जो थी दगती॥

८ उस यशस्विनी युद्ध-भूमि से, लाए ताजा लहू लुहान।
शोक युक्त धीरे से उसको, दिया कब्र में हा! स्थान॥
लेख लिखा कुछ नहिं समाधि पर, नहीं कोइ गाड़ा पत्थर।
केवल उसकी नामवरी ही, को समझा सबसे बहतर॥

—सी० वॉल्फ

इञ्चकेप-चट्टान

१ पूर्ण प्रशान्त जलधि अतिशय था, नहीं वायु की हलचल थी।
था अति सु-स्थिर पोत हमारा, सतह जलधि पर अविचल थी॥

२ अति लघु लहरें उठ उठ करके, "इञ्चकेप" से टकरातीं।
नहीं शब्द, चिन्हित करती थीं, घंटा तक न हिला पातीं॥
३ "ऐबर ब्राथक" ग्राम-निवासी, वृद्ध महन्त सभ्य था एक।
उतराने वाले लङ्गर से, घण्टा जिसने बाँधा एक॥
तूफानी लहरों से लङ्गर, हिल-डुल कर करता जब ज़ोर।
यात्रि जनों का भय सूचक हो, घण्टा करता था तब शोर॥
४ लहरों से ढँकती वह माँझी—सुनते तब रव घण्टा-जन्य।
इंचकेप-चट्टान निकट लख, कहते वे महन्त को धन्य॥
५ सभी वस्तुएँ सुन्दर दिखतीं, सूरज पूर्ण प्रकाशित था।
सिन्धु विहङ्गों का मण्डल भी, करता हर्ष प्रदर्शित था॥
६ इंचकेप-घंटे का लंगर, हरित जलधि पर था काला।
'राल्फ' नाम के चतुर लुटेरे, ने उसको देखा-भाला॥
७ ऋतु वसन्त की सत्ता पाकर, डाकू अधिक प्रमोदित था।
कभी कभी सीटी देता था, कभी मस्त हो गाता था॥
मन उसका अत्यन्त प्रफुल्लित, करता था सूचित यह बात—
कठिन क्रूरता भरी हुई है, पर था प्रमुदित उसका गात॥
८ 'इंचकेप' पर दृष्टि जमी थी, बोला—"खोलो किश्ती को"।
इंचकेप पर पहुँच सताऊँ, 'ऐबर ब्राथक' के ऋषि को॥
९ डोंगी झट नीचे डाली तब, माँझी लाए निकट चटान।
दुष्ट रॉल्फ ने झुक कर घण्टा, काटा लंगर से झट आन॥
० गड़ गड़ाट की ध्वनि कर घंटा, पानी में झट डूब गया।
उठे चतुर्दिक सत्वर बुद्बुद्, एक एक कर फूट गया॥
तब प्रसन्न हो कहा रॉल्फ ने, यहाँ यात्रि जो आवेंगे—
उनसे 'एबर ब्राथक-ऋषि' अब, धन्यवाद नहिं पावेंगे॥
१ रॉल्फ नाम का तब वह डाकू, झट जहाज पर लौट गया।
लूट मार कर हो धनशाली, स्काटलैण्ड को पलट गया॥

१२ अति कुहरे से घिर नभ रवि कर, देती नहीं दिखाई थी।
तीव्र पवन भी चली दिवस भर, सन्ध्या तक रुकपाई थी॥
१३ हुआ खड़ा तख्ते पर 'रोवर', अति अँधियारी छाई थी।
धरती भी ना दिखती उसको,—आशा यही लगाई थी—
आतुर होकर कहा रॉल्फ ने—"शीघ्र उजेला होता है—
चन्द्रोदय सा प्रतीत होता, अन्धकार कम होता है" ॥
१४ कहा किसीने—"सुना न क्या रव, होता लहरों का तट-पास।
यही विदित मुझको होता है, आ पहुँचे हम तट के पास॥
हैं हम कहाँ? नहीं कह सकता, यही एक इच्छा करता—
इंचकेप-घण्टे का हा! मैं, शब्द भला क्या सुन सकता?"
१५ कोई शब्द नहीं सुन पड़ता, लहरों की थी भीषण बाढ़।
यदपि वायु थी मन्द हुई पर—वे खेते जाते थे डाढ़॥
खाया अति धक्का जहाज ने, काँप गया—हो रहे अवाक।
'हे ईश्वर अब शीघ्र दया कर, है यह 'इंचकेप' की रॉक॥"
१६ तब अधीर हो दुष्ट रॉल्फ ने, छाती पीटी नोंचे बाल।
था निराश लहरें चढ़ आईं, डूब जहाज़ गया तत्काल॥
१७ लेकिन रोवर अन्त समय में, करता था हा! यह अनुमान।
एक नारकी कर घण्टा-ध्वनि, कहता-"रॉल्फ हुआ अवसान" ॥
—सौदे

स्वामि-भक्ति

१ धीमी थी आवाज़ पास ही में, रोता था कोई श्वान।
निकट लोमड़ी या कुत्ता है, किया गड़रिये ने अनुमान॥
थोड़ी देर ठहर कर उसने, चट्टानों में खोजा जब।
निकट कटीली झाड़ी भीतर, कुत्ता बैठा पाया तब॥

करता था हल चल झाड़ी में, छिपा हुआ रह रह कर शोर।
देख रहा था झाड़ी में से, कुत्ता अपने चारों ओर॥
२ केवल ढङ्ग जंगली था, वह कुत्ता नहीं पहारी था।
करता शब्द अनोखा था, वह भड़कीला भी भारी था॥
नहीं अन्य दिखता था कोई, उस घाटी में चारों ओर।
नहिं कोई सीटी देता था, नहिं कोई करता था शोर॥
३ एक बड़ी खाड़ी थी आश्रय, पड़ता जहाँ बर्फ भरपूर।
माह दिसम्बर का हिम सारा, रहता अन्त जून तक पूर॥
उस खाड़ी के ठीक सामने, ऊँची थी भारी चट्टान।
नीचे जिसके बहता झरना, श्रम का करता था अवसान॥
गिरि 'हलवलिन' मध्य यह थल, जो बस्ती से अति ही था दूर।
पग डण्डी भी नहीं निकट थी, खेतों से भी वह था दूर॥
नहिं कोई नर वहाँ गया था, थे न किसी के वहाँ निशान।
हाथ पैर के नहीं चिन्ह थे, होता जिससे कुछ अनुमान॥
४ उछल उछल कर जल में मछली, खुश हो करती थीं आवाज।
पर निर्जन चट्टान प्रान्त में; थी उनकी कोरी आवाज॥
एक काक की प्रतिध्वनि होती, करता था जल कल कल नाद।
इन्द्र-धनुष का वहाँ दृश्य था, करते बादल अविकल नाद॥
वायु-वेग से कुहरा भारी, आगे बढ़ता जाता था।
सब चीज़ों को ढँके हुए था, नहीं दृष्टि कुछ आता था॥
रवि-किरणें थीं वहाँ चमकतीं, वायु-वेग से चलती थीं।
पर चट्टान उसे छेड़ कर, नहीं भागने देती थी॥
५ खड़ा रहा हो चकित गड़रिया, सभय विचारों में अति डूब।
फिर कुत्ते के पीछे दौड़ा, चट्टानों पर से वह खूब॥
थोड़ी दूर दौड़ कर उसने, देखा नर-तन-पंजर एक।
पड़ा हुआ जो भू-तल पर था, मन में करने लगा विवेक॥

शीतल श्वास खींच फिर उसने, असल हाल प्रकटाने को।
देखा चारों ओर शीघ्र ही, निज सन्देह मिटाने को॥
अधिक निरीक्षण करने पर तब, जाना उसने सच्चा हाल।
विषम भूमि चट्टान युक्त थल, हुआ पथिक का है यह काल॥
किया याद उसने यह भी तब, कौन यात्री निकला था।
कहाँ वास करता था वह जन, कौन दिवस को आया था॥
लेकिन है आश्चर्य यही बस—जिससे यह आख्यान लिखा।
बात याद रखने लायक है, सदा यही अनिवार्य दिखा॥
अब तक कुत्ता निकट लाश के, चक्कर मारा करता था।
तीन माह से निर्जन थल में, रो रो कर दिन भरता था॥
इसमें कुछ सन्देह नहीं है, जब से यात्री मरा पड़ा।
स्वामी की रक्षा में कुत्ता, उसी जगह पर रहा खड़ा॥
क्या कुत्ते ने खाया अब तक, इसको तो ईश्वर जाने।
दी सहानुभूति जिसने यह, उसे मनुज क्या पहिचाने?

—वर्ड्सवर्थ

सच्ची राज्य-सत्ता

दूर देश इंग्लेण्ड निवासी, धन-संचय हित जाते हैं॥
अपनी विजय पताका को वे, ऊँची कर फहराते हैं॥
किन्तु स्वदेश वासियों की वे, तनिक नहीं परवा करते।
दिन पर दिन जो दरिद्रता में, कठिनाई से दिन भरते॥
व्यर्थ कला, विज्ञान तुम्हारा, व्यर्थ विजय वा व्यर्थ प्रताप।
नहीं दूर करते विमूढ़ता, क्षुधा-दाह का भीषण ताप॥
हाय! तुम्हारे देश-निवासी, वन-पशु सम होते जाते।
क्षुधा-दाह से पीड़ित होकर, भूख भूख हैं चिल्लाते॥

कर विमूढ़तामय जीवन को, दुर्गुण को अपनाते हैं।
लज्जा जनक काम-काजों में, जीवन सदा बिताते हैं॥
ऐ! बहादुरो!! कमर कसो, अज्ञान-शत्रु जड़ से खोदो।
उनके शीघ्र अबोध हृदय पर, ज्ञान-राज्य कायम कर दो॥

—डब्ल्यू० वाट्सन

मृत्यु-नाद

इस विस्तृत नभ के तारों के, नीचे मुझको दफनाओ।
बिलकुल शान्त पड़ा रहने दो, नहीं मुझे अब अपनाओ॥
मैं ने अपना जीवन सारा, सुख मय है सम्पूर्ण किया—
अब इच्छा से प्राण त्यागता, कब्र सहारा ढूंढ़ लिया॥
यह कविता समाधि पर मेरी, अङ्कित करना मरने पर।
करता था इसका ही चिन्तन, रखा ध्येय था जीवन भर॥
माँझी सम जीवन-नौका खे, सत्यस्थल यों आता है।
जैसे व्याधा कर शिकार को, लौट स्वगृह को आता है॥

—आर० एल० स्टीवेन्सन

सहानुभूति

एक समय अति दुखित दशा में, पड़ा हुआ मैं लेटा था।
सुना एक अभिमानी ने दुख, पर उसका रुख रूखा था॥
एक स्वर्ण-मुद्रा दी उसने, पर न सान्त्वना किंचित् दी।
कुछ दुख हलका होते ही तब, मैं ने मुद्रा लौटा दी॥
सीधा शीघ्र खड़ा हो मैंने, उसको आशीर्वाद दिया।
दी आशीस दान को उसके, जो था उसने दान किया॥

दुःख व्याधि ने अति ही मुझको पैसा-इच्छुक बना दिया।
इसके बाद एक साधारण, जन ने वहाँ प्रवेश किया॥
बाँधा मेरा मस्तक उसने, रोटी भी खाने धर दी।
कर परिचर्या उसने मेरी, मुझे शान्ति सब विधि कर दी॥
हा! उसके उपकृत ऋण से मैं, उऋण भला क्या हो सकता?
सहानुभाव से भी बढ़ करके, स्वर्ण भला क्या हो सकता?

—सी० मेके

गरीबों को पालो

यदि विश्व में बनना तुझे, सत्पात्र अङ्गीकार है।
तो एक सद्गुण मात्र ही, सच्चा सहायक सार है॥
मत व्यय करो निज द्रव्य को, धनवान् के आभार में।
जो द्रव्य से ही द्रव्य का, पलटा करे व्यवहार में॥
हैं पात्र—केवल दीन जन, कर दान उनके अर्थ में।
जो हैं दुखी भूखे विकल, बस—दान दे परमार्थ में॥
निश्चय यही रख तू सदा, "सत्पात्र होना चाहिए"।
पर ध्यान रख इसका—कहां? कब? दान देना चाहिए॥

—ग्रेफिथ

गुलाम का सपना

बिना कटी ही धान—खेत ढिग, पड़ा हुआ वह सोता था।
कर में हँसिया दबा हुआ था, सीना सारा उघरा था॥
उलझे हुए बाल थे उसके, रेत-राशि में मग्न हुए।
उसको अपनी इसी दशा में, जन्म-भूमि के स्वप्न हुए॥

स्वप्नावस्था में ही उसने, 'नाईजर' सरिता देखी।
चला ताड़-वृक्षों के तल से, राजा बन करता शेखी॥
सुना नाद 'टुन' 'टुन' का उसने, शुतुर-काफिलेवालों का।
उतर रहा था जो घाटी से, लेकर आश्रय भालों का॥
श्याम नेत्र वाली रानी को, खड़ी हुई बच्चों के बीच।
प्रेम विकल हो देखी उसने, लिया हाथ सब ही ने खींच॥
गल-बाहें भी डालीं उसके, मुख को सबने चूम लिया।
सुप्त दास ने आँसू दृग से, रेणु-भूमि पर डाल दिया॥
फिर इसके पश्चात् चला वह, अश्वारोही बन कर वीर।
थी लगाम सोने की उसकी, चला चपल हो सरिता-तीर॥
प्रति छलाङ्ग पर वह फौजीवत्, निज असि का सुनता था नाद।
जब जब उसकी म्यान बगल से, टकराती होता था नाद॥
लाल रंग के झण्डे के सम, 'फ्लेमिङ्गो' उड़ते सब ओर।
सन्ध्या तक पीछा कर उनका, आया घास युक्त थल ओर॥
उस थल पर उसने अति छोटी कुटी काफ़िरों की देखीं।
महा-सिन्धु भी देखा उसने, लहराती लहरें देखीं॥
सुनी रात्रि को सिंह-गर्जना, था शृगाल करता आवाज।
दरयाई घोड़ा भी देखा, निकट स्रोत करता आवाज॥
स्वप्नावस्था में सब उसको, हुई ज्ञात ऐसी आवाज।
जैसे विजय-दुन्दुभी बजकर, करती हो भारी आवाज॥
लाखों जिह्वा द्वारा जंगल, करता था स्वतन्त्रता-नाद।
मरुस्थली की पवन वेग युत, थी करती स्वतन्त्रता नाद॥
इस कारण वह अधिक शीघ्र ही, मरु पर से था जाग उठा।
सपने की स्वतन्त्रता ही पर, मनही मन मुसकुरा उठा॥
मालिक के कोड़ों की उसको, नहीं तनिक परवाह हुई।
गर्म सूर्य की किरणों से भी, उसे न किंचित आह हुई॥
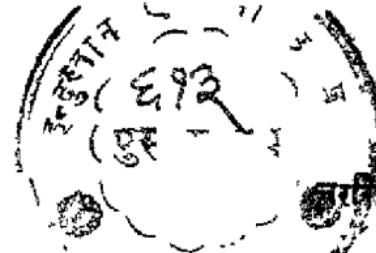
[illegible] काल ने उसको पूरा, बस स्वतन्त्र कर दिया अहा।
मृत शरीर ही केवल उसका, रेणु-भूमि पर पड़ा रहा॥
देह पुरानी बेड़ी सम अति, जिसमें कैद आतमा थी।
बन्धन को कर छिन्न किसी विधि, हो स्वतन्त्र झट भागी थी॥

—एच० डब्ल्यू० लॉंगफेलो

नरगिस का फूल

बादल ज्यों उड़ते फिरते हैं, शैल-गुफाओं के ऊपर।
उसी भाँति मैं भी एकाकी, फिरता था निर्जन भू-पर॥
पड़ी अचानक दृष्टि हमारी, सभी सुनहले पुष्पों पर।
झील-किनारे, वृक्षों-नीचे, झूम रहे थे विटपों पर॥
नरगिस-वृक्ष लगे अति सुन्दर, पा समीर का प्रबल प्रवाह।
हिलते डुलते लहराते थे, करते नृत्य बड़ा उत्साह॥
आभा युक्त सितारों के सम, चमक रहे थे वे मानो।
उनकी उज्ज्वल तम आभा को, आकाशी-गंगा जानो॥
दृष्टि जहाँ तक दौड़ाता था, दिखते थे वे ही हमको।
एक दृष्टि में उसी किनारे, दस हज़ार पाया उनको॥
अपने सुन्दर मस्तक को वे, अति आनन्दित हो होकर।
उछल उछल कर ऊँचे करते, कूद रहे थे खुश होकर॥
यद्यपि चमकीली लहरें भी, पुष्प निकट लहराती थीं।
पर, पुष्पों की चमक दमक से, लज्जित हो झुक जाती थीं॥
इस अवसर पर भला सु-कवि क्या, अपना धर्म चूक सकता?
बार बार अवलोक उन्हें मैं, मन में यह निश्चय करता॥
मुझे प्रकृति से कितनी सम्पति, मिल सकती है इस ढँग से?
इससे भी क्या अधिक प्राप्य है, मिल सकती जो इस रँग से॥

अक्सर जब बिस्तर पर अपने, सुस्त हुआ पड़ रहता हूँ।
तब तो अपने हृदय पटल पर, यही दृश्य रख लेता हूँ॥
अतः अकेले में भी मुझ को, सच्चा सुख होने लगता।
मन भी अति प्रसन्न होता है, नरगिस सम नचने लगता॥
—वर्ड्सवर्थ

नरगिस-पुष्प

ऐ! नरगिस के पुष्प, शीघ्र लख नाश तुम्हारा।
होता है अति विकल, विरह से हृदय हमारा॥
उदित हुआ जो सूर्य, शीघ्र गामी कहलाता।
दर्शाता नभ-मध्य अस्त, नहिं वह हो पाता॥
प्रिय! देखो वह सूर्य, नहीं है अस्ताचल पर।
सन्ध्या तक तो ठहरो, मेरे साथ अवनि पर॥
हम तुम सन्ध्या समय, ईश-गुण-गान करेंगे।
प्रिय वर तत्पश्चात्, आप के साथ चलेंगे॥
अमित स्वल्प जिमि युवा-काल होता है तेरा।
ऐसा ही प्रिय बन्धु नाश होता है मेरा॥
अथवा ज्यों जल-बूँद, ग्रीष्म में है उड़ जाती।
किम्वा मोती तुल्य, ओस नहिं मिलने पाती॥
—आर० हेरक

स्वतन्त्रता

दुखित भाग्य से मुक्त हुआ, अब धैर्य, तेज प्रवेश हुआ।
खाड़ी भँवर आदि सब थल में, देव-दूत-सन्देश हुआ॥

ग्राम्य-स्वतन्त्र कुटीरों पर नित, संवेदन समीर बहता।
तुच्छ झोपड़े वालों को अब, आशाप्रद सपना दिखता॥
२ देश वासियो! तुमने अति दुख, पराधीन रह सहन किया।
दास-शृङ्खला तोड़ उठो अब, उन्नति कर लो खोल हिया॥
देखो प्रिय प्रभात आभा ने, तिमिर निशा का मिटा दिया।
हाँ, तुमने नहिं भाग्य-कोष में, सदा शोक ही जमा किया॥
किन्तु, तुम्हारे सन्मुख वीरो! वह भविष्य का सुन्दर मार्ग।
खुला हुआ है पूर्ण रूप से, सुख प्रद अति प्रशस्त वर मार्ग॥
३ मेरे इस सुन्दर गाने में, पूर्व जनों की करुणा-ध्वनि।
होगा नहिं दुखमय निनाद वह, निकलेगी नहिं वह प्रतिध्वनि॥
किन्तु शक्ति वह ऐसी होगी, विद्युत् सम बढ़ जावेगी।
इस भूतल के कण कण में वह, हो प्रवेश चढ़ जावेगी॥
नहीं दासता के बन्धन से, जकड़े हुए मूक चर सम।
धिक्कारें नहिं दुखमय जीवन, गरुड़तुल्य गावेंगे हम॥
मेरे प्यारे रूसी भाई! क्यों झट नहीं कूद पड़ते।
अत्याचारी, दुष्टों के अब, लोप हुए रस्सी तख्ते॥
रक्त-रञ्जिता रस्सी अब वे, प्राण-दण्ड के भी तख्ते।
इस स्थल से सदा काल को, दूर हुए हैं दिख पड़ते॥
कीर्ति उन्हीं के लिए मिली है, रूसी देश की जिनने शान।
बलि-वेदी पर शीस चढ़ाए, था जिनको जननी का मान॥

कोयल

१ हे वसन्त-ऋतु-सूचक कोयल! तेरा स्वागत करता हूँ।
तेरी सुन्दर तान सुनी जो, अब भी सुन मन भरता हूँ॥

क्या तुझको मैं पक्षी बोलूँ ? था केवल बहती आवाज।
कभी दूर जो सुन पड़ती है, कभी निकट आती आवाज॥
कभी कभी मैं लेट घास पर, सुनता हूँ दुहरी आवाज।
एक पहाड़ी से दूजी तक, टकराती तेरी आवाज॥
कभी कभी वह एक साथ ही, दूर निकट सुन पड़ती है।
तेरे केवल दर्शन के हित, उत्सुकता मन बढ़ती है॥
औरों को तो तू घाटी में, "निस्पृहता से गाती है"।
सुन्दर दिन एवम् पुष्पों से, सज्जित समय बताती है॥
किन्तु मुझे तू बालक पन की, स्वप्न तुल्य जो बात हुई।
याद दिलाती है तू उसकी, मीठे स्वर में प्राप्त हुई॥
है वसन्त-ऋतु ही मुझको प्रिय, तीन बार स्वागत आवाज।
पक्षी सम नहिं दिखती मुझको, किन्तु अलक्ष आगत आवाज॥
मुझ को तो तू वही एक है, सुना छात्र-जीवन में नाद।
झाड़ी, पेड़, बाग अरु नभ में, खोज फिरा जंगल में नाद॥
तुझे खोजने को बहुधा मैं, हरियाली में था जाता।
किन्तु अभी तक हे प्रिय आशा! बना रहा वह ही नाता॥
तेरे पाने की अभिलाषा, मन-मन्दिर में सदा रही।
किन्तु आज तक भी तू मुझको, दिखने से हा रहित रही॥
अब तक भी मैं लेट घास पर, हो प्रसन्न सुनता प्रिय नाद।
जिससे मुझको बालकपन का, सुन्दर जीवन आता याद॥
धन्य भाग हे सुन्दर पक्षी, सुन करके तेरा कल नाद।
जिस स्थल पर हैं हम रहते, वह आता है मुझ को याद॥
बचपन ही के समय सदृश यह, परिस्तान सा लगता है।
जो कि तुम्हारे लिए योग्य अति, सुन्दर गृह यह बनता है॥

—वर्ड्सवर्थ

सुखी योद्धा

पर-अनहित पर नहीं मुदित हूँ, नहीं लाभ पर मुझको डाह ।
भव-सागर की कठिन तरंगें, नहीं डिगा सकतीं मन वाह ! ॥
पर-कष्टों का अनुभव करता, नहीं शत्रु से भय खाता ।
मित्रों से भी घृणा नहीं है, नहीं मृत्यु से घबराता ॥
भावी के परिणामों की भी, नहीं तनिक भी मुझको आह ।
शान्त चित्त गम्भीर सदा रह, न्याय नीति की चलूँ सु-राह ॥

निर्दोष-आत्मा

क्या पत्थर की दीवालें भी, कारागृह सम हो सकतीं ?
लोहे के पिंजड़े में भी क्या ? वीर-आत्माएँ घिरलीं ?
रहे चित्त निर्दोष शान्ति मय, तपोभूमि वह बन जाती ।
करते योगी वास जहाँ हैं, ऋषी-भूमि वह कहलाती ॥

पवित्र जीवन

द्वेष किसी से करो कभी नहिं, मध्य भाव से सदा रहो ।
पर की क्षति को अपनी समझो, नहीं अन्यथा भाव गहो ॥
देखा हो यदि पर को तुमने, करते हुए कोई अपराध ?
शीघ्र करो मत उसको जाहिर, चाहे जितना होय अगाध ॥
समय निरन्तर भाग रहा है, नहिं कोई कह सकता बात ।
मृत्यु अचानक कब आ जावे, शेष रहे यह मुर्दा गात ॥
अतः क्षणिक जग-जीवन है यह, नहीं किसी से द्वेष करो ।
हानि किसी की तनिक न होवे, इस पर भी नित ध्यान धरो ॥

स्वतः सन्तोषी

रहता हूँ सन्तोष भाव से, करता हूँ मैं यहीं निवास।
नहीं चाहिए मुझको ज्यादा, रखता हूँ नहिं पर की आस॥
रखूँ ईर्षा-भाव न उर में, सन्तोषामृत करता पान।
होकर विजयी नृप-सम जग में, शान्त चित्त बन पाता मान॥

वीर-हृदय

जो कुछ भी हम हैं इस जग में, सचमुच ही अति उत्तम हैं।
रखते हैं हम हृदय वीर सम, वीरों जैसे उद्यम हैं॥
दैवयोग से हैं गरीब हम, किन्तु मनोरथ सच्चे हैं।
कर कर्त्तव्य कार्य साधेंगे, नहीं कर्म में कच्चे हैं॥
खोजेंगे हम पावेंगे हम, जरा कसर फिर नहीं करें।
वीर बनाकर अपने को हम पराधीन हो नहीं रहें॥

भीरु जन

मृत्यु के बस—पूर्व ही, नर भीरु मरते बार बार।
शूर जग में जन्म ले, मरता है केवल एक बार॥
आश्चर्य मुझ को है यही, कि मौत तो अनिवार्य है।
डरना उसे फिर क्यों भला? जग का सनातन कार्य है॥

सार्थक मौत

शीघ्र होता है मरण, या देर से होता कभी।
मरना सभी को एक दिन, कोई नहीं रहता कभी॥

मृत्यु होगी सारथक, निज पूर्वजों के नाम में।
या कहो है मृत्यु उत्तम, धर्म के ही काम में॥

काम

करो कार्य-प्रारम्भ कभी तुम, सदा रीति से पूर्ण करो।
हो छोटा या बड़ा कार्य पर—तन्मय हो सम्पूर्ण करो॥
अगर नहीं करना है तुमको, कभी नहीं आरम्भ करो।
जो कुछ करना है सो करलो, यही नियम प्रारम्भ करो॥

प्रार्थना

हे ईश करुणाधार तुम से, प्रार्थना अन्तिम यही।
कर दो प्रकट मम दोष, या सद्गुण बताओ तुम सही॥
यदि कर्म रूपी भ्रान्त पथ पर, अन्ध बन बस चल गया।
पलटाइए नहिं मार्ग प्रभुवर, हो गया सो हो गया॥
अपराध कर मेरे क्षमा, करुणा करोगे क्या नहीं?
मम हाथ दोषी हों भले, पर आत्मा हरगिज़ नहीं॥

प्रातः—वन्दना

होते प्रात जागता हूँ मैं।
रखा सुरक्षित प्रभु ने निशि में॥
उत्तम भाव दीजिए प्रभु वर।
करूँ कार्य शुभ आज दिवस भर॥

सुस्त मत रहो

आलस्य त्यागो वीर बन, मत परमुखापेक्षी रहो।
भावि-देवी स्वयम् कायर, मत उसे जपते रहो॥
उद्योग के उद्यान में, निर्भीक हो उद्यम करो।
है कार्य—थल सर्वत्र ही, बस कर्म-पथ पर पग धरो॥

सब दिन होत न एक समान

सदा न कोयल तान लगाती, सदा न उपवन खिलते हैं।
सदा न सुख से राज्य करें नृप, सदा न प्रेमी मिलते हैं॥

लघु से वृहत

पावस की लघु बूँदों से भी, वृहत् सिन्धु बन जाता है।
रज के भी अति क्षुद्र कणों से, सुन्दर थल बन जाता है॥
दयालुता के लघु कर्मों से, जग सुन्दर बन जाता है।
प्रेम भरे लघु शब्दों से भी, विश्व स्वर्ग बन जाता है॥

साहसी-हृदय

यदि उर है तैयार तुम्हारा, उत्तम कृत करने के हेतु।
होवे यदि उत्पन्न निराशा, विमल कार्य बनने के हेतु॥
तो तुम एक शूर नर के सम, सदा याद उद्योग रखो।
मकड़ी और नृपति का ही तुम, मूल मंत्र आदर्श रखो

क्रमशः उन्नति

क्रमशः ऊँचे से ऊँचे अति, बढ़े चलो सुन लो भाई।
अच्छे से उत्तम बन जाओ, अत्युत्तम शिक्षा पाई॥

दयालुता

अमित उदार हृदय 'उपवन' है, 'मूल' उदार विचार हुए।
वचन उदार 'मञ्जरी' जानो, कृत 'फल फूल' उदार हुए॥

सुख

सचमुच में यदि कोई सुख है, जिसका मूल्य किया जाता।
वही दिव्य मणि तो सचमुच में, हृदय बीच पाया जाता॥
निपट मूढ़ जो व्यर्थ भटकते, हर्ष-स्रोत वह निकलेगा।
तब यह अपना तुच्छ झोपड़ा, दिव्य भवन दर्शावेगा॥

—एन० काटन

चमको चमको छोटे तारे

१ चमको चमको छोटे तारे। हूँ अचरज में क्या तुम प्यारे?
जग के ऊपर इतने ऊँचे। हीरे से तुम दिखो समूचे॥
२ प्रखर दिवाकर जब छिपता है। अन्धकार जग में मचता है॥
लघु प्रकाश से काम निकलता। सर्व रात जब दिया टिमकता॥
३ अन्धकार में तुम्हें पथिक गण। धन्यवाद दें पा प्रकाश-कण॥
वे कैसे अपना पथ पाते। अगर नहीं तुम यों चमकाते॥

३ श्याम नील नभ में तुम बसते। मम खिड़की पर आकर हँसते॥
कभी तुम्हारी आँख न लगती। जब तक सूर्य-किरण नभ जगती॥
—नरसरी राइम

घड़ी

घड़ी पुकारत 'टिक टिक' प्यारे, शीघ्र करो सब अपना काम।
समय शीघ्र जाता है इससे, करो आज का इस ही याम॥

खेल और काम

जब तक तुम करते निज कृत को, तब तक तुम निज कृत्य करो।
रहो खेलने में तुम जब तक, तब तक खेला नित्य करो॥
सुखी और हर्षित होने का, मार्ग यही सच्चा है सार।
जो कुछ तुम करते हो उसको, पूरा करो शक्ति-अनुसार॥
किया अपूर्ण कृत्य जग में जो, कभी नहीं अच्छा होता।
एक समय में एक काम ही, किया कहीं अच्छा होता॥
सम्मति है उत्तम यह सब की, इस पर नित तुम ध्यान धरो।
खेल-समय तुम खेलो भाई, ठीक समय पर काम करो॥

गम्भीर-भावना

नील अगाध जलधि अन्तर्गत, अति गम्भीर गुफा के बीच।
विमल कान्तिमय मणी अनेकों, पड़े हुए रहते मिल कीच॥

लेकर जन्म अदृश्य पुष्प अति, फैलाते हैं मरु पर गन्ध।
खिल करके मुरझाते हैं सब, करती मारुत नष्ट सुगन्ध॥
—ग्रे

सत्यता

सत्य हमेशा बोलो प्यारे, कुछ भी हो इसका परिणाम।
जो ग़लती को आप छिपाता, ग़लती ही उसका परिणाम॥

॥ इति ॥